# करके देखा, समझ गया

## भाग-1 के 'रूखे-सूखे' विच्छेदन की कवायद

**सुभाष चन्द्र गांगुली**

छात्रों को अध्याय का शीर्षक पहले से पता होता है, जैसे यहाँ शीर्षक 'विकास' था। किसी अध्याय का शीर्षक 'प्रकाश' वगैरह हो सकता है। किन्तु शुरू में इस अवधारणा की कोई अमूर्त परिभाषा देने का प्रयास नहीं किया जाता। इसकी बजाय, शुरुआत होती है अपने आसपास से कुछ सामग्री लेकर उठापटक करने (यानी उनके साथ प्रयोग करने) से। अधिकांश सामग्री परिचित होती है, कुछ शायद उतनी जानी-पहचानी न हो। इसका एक मतलब यह होता है कि कमसिन छात्रों को किसी संक्षिप्त तकनीकी वक्तव्य में ठूँस-ठूँसकर भरे हुए अर्थों को समझने के लगभग असम्भव, अनावश्यक, निष्फल, दर्दनाक और डरावने प्रयास की मजबूरी से निजात मिलती है। प्रायः अधिकांश नियम और सिद्धान्त इसी तरह के तकनीकी वक्तव्यों के रूप में होते हैं और छात्र के पास उस परिघटना के ठोस अनुभव की कोई पृष्ठभूमि नहीं होती, जिसने उन नियमों या अवधारणाओं को जन्म दिया है।

यहाँ इस कार्यक्रम में एक सम्भावना पैदा की जा रही हैः इस बात की अग्रिम जिज्ञासा और जीवन्त अनुमानों के आधार पर कि आगे क्या होगा। और ध्यान दें, यह कोई निष्क्रिय जिज्ञासा नहीं बल्कि सक्रिय व चौकन्नी जिज्ञासा है क्योंकि हर कोई प्रयोग में भागीदार है। जो कुछ होता है, उसे देखकर कोई भी भौंचक्का नहीं है। फिर प्रयोग के हर चरण में सम्बन्धित परिघटना के पीछे का गहरा यथार्थ उजागर हो रहा है, परत-दर-परत सुलझ रहा है। स्वाभाविक रूप से यह यथार्थ अमूर्त है। लिहाज़ा, प्रशिक्षु उस प्राकृतिक क्रम को सीखते हैं जिसे 'वैज्ञानिक विधि' कह सकते हैं। अर्थात् पहले अवलोकन और उसके बाद अमूर्तिकरण और सीखना। यह सब महज़ किसी व्याख्यान को सुनकर नहीं बल्कि इसी तरह से कर-करके होता है।

### जानी-पहचानी चीज़ों के उपयोग का गुणगान

अधिकांश चीज़ें रोज़मर्रा के जीवन से होती हैं, इसलिए सरल और जानी-पहचानी होती हैं और महत्वपूर्ण बात

यह है कि वे यथासम्भव सस्ती होती हैं। उदाहरण के लिए उपरोक्त प्रयोग में प्लास्टिक के कटोरे और तश्तरी, रूई, छोटी चिमटी, नमक, पानी वगैरह का उपयोग किया गया। जटिल, महँगे व जटिल नज़र आने वाले उपकरणों और सामग्रियों के ऐसे घरेलू विकल्पों (जहाँ सम्भव हो) की खूबियों और उनके लाभों की पूरी फेहरिस्त बनाना बहुत मुश्किल है। यहाँ कुछ प्रमुख खूबियाँ गिनाना पर्याप्त होगा।

सबसे पहले लागत की बात मन में आती है। चूँकि ये सस्ते हैं, बहुत कम लागत में उपकरणों व सामग्री की बड़ी संख्या तैयार की जा सकती है। इस प्रकार से, प्रत्यक्ष व सक्रिय भागीदारी (मात्र देखने के विपरीत) के मार्ग में आने वाली वित्तीय अड़चन कम हो जाती है। वैज्ञानिक प्रयोगों को ग्रामीण भारत या शहरी झुग्गी बस्तियों में ले जाने के सन्दर्भ में यह एक महत्वपूर्ण बात है।

अलबत्ता, यदि हमारा पूरा ध्यान इसी बात (लागत) पर लगा रहे और उससे आगे न जाए, तो लगेगा कि ऐसा करना तभी उपयुक्त होगा जब कोई चारा न हो और समृद्धि आने पर इस तरीके को छोड़ देना चाहिए। मुझे तो ऐसा लगा कि यह तरीका शिक्षा के उन केन्द्रों के लिए भी बेहतर है जो महँगे 'सटीक' प्रयोगशाला उपकरण खरीद सकते हैं। और तो और, 'सुनहरे युग' के आगमन के बाद भी विज्ञान शिक्षा ऐसे ही साधारण उपकरणों और सामग्री के ज़रिए दी जानी चाहिए। क्यों? मैं समझाने की कोशिश करता हूँ।

यह सवाल हमें उस अव्यक्त त्रुटिपूर्ण धारणा की ओर ले जाता है जिसे संस्थागत प्रयोगशाला दस्तूर के ज़रिए लगभग एक आस्था के रूप में पेश किया जाता है कि 'वैज्ञानिक प्रयोग' कहलाने वाली तथाकथित 'गम्भीर' गतिविधि को उसके अनुरूप उपकरणों और सामग्री का सहारा मिलना चाहिए और ये उपकरण व सामग्री दिखने में तथा उपयोग में हमेशा विशिष्ट (अलग) होने चाहिए। जब हम जानी-पहचानी सामग्री के उपयोग की बात करते हैं, तो इससे यह तथ्य रेखांकित होता है कि 'प्रयोगशाला' (प्रयोग करने के लिए विशेष स्थान) की विशेष महक कदापि अनिवार्य नहीं है, हालाँकि किसी विशिष्ट प्रयोगशाला उपकरण को लेकर कोई मुमानियत भी नहीं है। जैसे यहाँ परख-नली का उपयोग किया गया। दरअसल, कई गैर-विशिष्ट और गैर-प्रयोगशालाई दैनिक उपयोग की चीज़ें भी प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करने का मकसद पूरा कर सकती हैं और वैज्ञानिक प्रयोगों के ऊपर से रहस्य का आवरण तोड़ सकती हैं। इस तरह से वैज्ञानिक प्रयोगों के साथ एक सरल-सहज सम्बन्ध बनाने का रास्ता तैयार होता है।

सीखने के दौरान यह मानसिक सहजता विज्ञान के क्षेत्र में यात्रा के लिए घबराहट से मुक्त, ठण्डे, आत्म

विश्वास से भरपूर (मुगालते से नहीं) सम्बन्ध को सुदृढ़ करने में मददगार होगी। और तो और, इससे शायद स्वयं छात्रों में भी यह हौसला पैदा होगा कि वे खुद उपयुक्त उपकरण वगैरह का आविष्कार/खोज कर सकें। यह उनकी सृजनात्मकता को सामने लाएगा।

उदाहरण के लिए, वहाँ हमने एक रोचक घटना सुनी जो इस बात को उभारती है। एक ग्रामीण स्कूल में किसी प्रयोग के दौरान छेद करने के लिए मोटी सुई उपलब्ध नहीं थी, स्थानीय किराना/स्टेशनरी की दुकान पर भी नहीं मिली। तय हुआ कि प्रयोग को कम-से-कम कुछ समय के लिए टाल दिया जाए। फिर अचानक एक किशोर को बबूल का काँटा इस्तेमाल करने का ख्याल आया जो गाँव में हज़ारों की संख्या में उपलब्ध थे। तब से बबूल का काँटा *एकलव्य-किट* का ज़रूरी हिस्सा बन गया। नए प्रयोग विकसित हुए जिनमें बबूल का काँटा सुई से ज़्यादा उपयुक्त था। हमने अपनी आँखों से देखा है कि बबूल के काँटे का उपयोग कितने अनगिनत तरीकों से किया जाता है।

इस सन्दर्भ में मैं नॉर्मन बैथ्यून को उद्धरित करने के मोह को छोड़ नहीं पा रहा हूँ। बैथ्यून एक कनाडियन सर्जन (और सीने की सर्जरी के उपकरणों के नवाचारकर्ता) थे। उन्होंने हमारे पड़ोसी देश चीन में लाखों लोगों का दिल जीत लिया था। वहाँ उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान के आक्रमण के खिलाफ चीन के लोगों के साहसी संघर्ष में एक सर्जन के तौर पर साथ दिया था और युद्ध में मारे गए थे। घायल चीनी सैनिकों के उपचार हेतु वे अपना जुगाड़ू ऑपरेशन थिएटर ऐन युद्ध भूमि पर ले गए थे। इससे पहले वे रिपब्लिकन्स की ओर से स्पेनिश

**चित्र-1:** बबूल के काँटे से फूलों का विच्छेदन आसानी-से किया जा सकता है। इसी तरह अन्य काँटे व खजूर की पत्ती के नुकीले सिरे भी काँटे की तरह काम करते हैं।

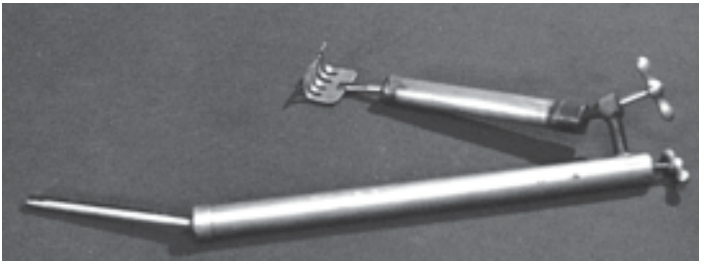

**चित्र-2:** नॉर्मन बैथ्यून ने युद्ध भूमि पर काम करते हुए सर्जरी के साजो-सामान की कमी को समझा और कुछ उपकरणों या औज़ारों को नए सिरे से बनाया और कुछ को रीडिज़ाइन किया।

गृह-युद्ध में शरीक हुए थे और रक्ताधान की तकनीक को युद्ध भूमि में साकार किया था। इस तरह उन्होंने अनगिनत जानें बचाई थीं। वे अक्सर कहा करते थे, "जो सर्जन उन सुरागों और जवाबों को नहीं देख सकता जो प्रकृति और घाव उसके सामने रखते हैं, उस सर्जन को शरीर की काटपीट करने की बजाय खंतियाँ खोदना चाहिए।" एक उदाहरण से उनकी बात स्पष्ट हो जाएगी। कनाडा में रहते हुए उन्होंने एक अत्यन्त सफल सर्जिकल औज़ार बनाया था (जिसे उनके ही नाम पर बैथ्यून रिब शीयर कहते हैं) जो मोचियों द्वारा जूतों में से कीलें निकालने के यंत्र के आधार पर बना था। वे उस समय उपलब्ध काटने के उपकरणों से काफी असन्तुष्ट थे। जब वे मरम्मत के बाद अपने जूते लेने मोची के पास गए तो उनका ध्यान मोची के औज़ार की ओर गया। उसमें भावी सम्भावनाएँ उन्हें तत्काल नज़र आईं। वे उस औज़ार को मोची से खरीदकर घर ले आए और मज़ाक में घोषणा की कि यह 'संयुक्त जूता मशीनरी द्वारा ऑपरेशन थिएटर को एक तोहफा' है। उनकी पत्नी (जिनसे बाद में वे अलग हो गए थे) के अचरज का ठिकाना न रहा क्योंकि उन्हें तो वह एक 'अजीबोगरीब औज़ार' ही दिख रहा था। डॉ. बैथ्यून का जवाब थाः "एकदम सही, यह एक अजीबोगरीब औज़ार ही है। और दो सप्ताह के अन्दर यह एक सुन्दर, चमचमाती कैंची होगी जो गुनगुनाते हुए पसलियों को चीर देगी।"[1] और ऐसा ही हुआ।

मैं यकीन से कह सकता हूँ कि बबूल के काँटे के नए उपयोग का वह अनाम किशोर आविष्कारक (बदकिस्मती से उसका नाम किसी को नहीं मालूम) डॉ. बैथ्यून से बहुत प्रशंसा और प्रेम पाता। और सन्दर्भ में थोड़े व उपयुक्त

[1] *The Scalpel, The Sword: The Story of Dr. Norman Bethune – By Ted Allan and Sydney Gordon, Monthly Review Press, New York and London, 1973, p. 52-53.*

परिवर्तन के साथ देखें तो बैथ्यून की बात का मर्म वैज्ञानिक व्यवसाय में लगे हममें से हरेक व्यक्ति पर लागू होता है।

यदि मैं थोड़ी बिगड़ी हुई उपमा का उपयोग करूँ या थोड़ी अतिशयोक्ति करूँ तो मेरा अनुभव बताता है कि इस सन्दर्भ में वैचारिक बनावट, सामाजिक व संस्थागत परिवेश और निजी हैसियत व अनुभव के अनुसार निम्नलिखित में से कोई एक (एक साथ दो नहीं) एहसास रुकावट बनता है:

- विज्ञान का मतलब होता है 'प्रयोगशाला' नामक मध्ययुगीन चमत्कार-कक्ष। वहाँ अत्यन्त कुशाग्र, चतुर और जादू में प्रवीण लोग, लम्बे-लम्बे लबादे पहनकर, निहायत पेचीदा दिखने वाले उपकरणों और दुर्लभ पदार्थों के साथ, विभिन्न करतब करते हैं, जो आम लोगों की पहुँच से बाहर हैं।
- विज्ञान का मतलब है एक पवित्र ध्यान-कक्ष जिसे प्रयोगशाला कहते हैं। यहाँ अत्यन्त 'प्रतिभावान' छात्र और शोधकर्ता 'अति-पवित्र' सत्य की खोज में व्यस्त रहते हैं। इनमें से कई को समय-समय पर विभिन्न पुरस्कार मिलते हैं।
- विज्ञान का मतलब है 'प्रयोगशाला' नामक यंत्रणा कक्ष जहाँ आपको प्रायोगिक कक्षा नामक प्रसूति पीड़ा से गुज़रना होता है जो किताबों से मेल खाते परिणाम कभी नहीं उगलता – प्रतिभावान छात्रों के लिए भी नहीं। इसलिए आपको (किताब से मेल खाते परिणाम निकालने के लिए) उल्टी तरफ से गणना का सहारा लेना पड़ता है। यदि पकड़े गए तो खलबली मच जाती है और दण्ड मिलता है।

इस तरह के एहसासों के विपरीत एक समग्र, ज़रूरी, यथार्थवादी और लाभदायक विचार है कि जो नज़र आता है, उसके पीछे के गहरे यथार्थ की वैज्ञानिक विधि से खोज उन चीज़ों से शुरू हो सकती है और यथासम्भव होनी भी चाहिए जो हमारे घर के अन्दर और आसपास बिखरी हैं। और यह खोज कदापि भयजनक, बेस्वाद और एकरस नहीं होगी बल्कि यह रोमांच, खुशनुमा अपेक्षाओं और समय-समय पर असफलता के भाव से भरपूर खोजी यात्रा होगी (जिसमें मेहनत तो बहुत लगेगी) लेकिन यह एक ऐसी प्रक्रिया होगी जिसमें हम सब शरीक हो सकते हैं, यह किन्हीं खास किस्म के लोगों के लिए आरक्षित नहीं होगी।

इसमें कोई दो राय नहीं कि 'प्रयोगशाला की महक' से मुक्त ऐसी रोज़मर्रा की सामग्री (जहाँ तक व्यावहारिक हो) एक महत्वपूर्ण तत्व हो सकता है जिसके ज़रिए इस तरह के सन्देश छात्र को प्रारम्भ से ही दिए जा सकते हैं। यह एक महत्वपूर्ण बुनियादी विचार है कि प्रयोग के औज़ार और कुछ नहीं, अपनी भुजाओं और संवेदी अंगों की प्रकृति द्वारा निर्धारित सीमित क्षमताओं को विस्तार देने के

साधन हैं। यह विचार गैर-जटिल व थोड़े कम परिष्कृत उपकरणों के ज़रिए आसानी-से दिया जा सकता है, बशर्ते कि ये उद्देश्य की पूर्ति करते हों। अलबत्ता, उपकरणों की इस भूमिका को लेकर वहाँ कोई चर्चा हमारे ध्यान में नहीं आई।

## अच्छे से देखो, अच्छे से सुनो, अच्छे से सूंघो, अच्छे से छुओ

प्रत्यक्ष के पीछे के गहरे यथार्थ को उजागर करते हुए ज़ोर इस बात पर है कि चलते हुए प्रयोग के उन सारे पहलुओं का बारीक व विस्तृत अवलोकन किया जाए जो हमारी इन्द्रियों की पहुँच में हैं। तो, प्रशिक्षु प्रत्यक्ष रूप से यह सीख रहे हैं कि प्राकृतिक विश्व/पर्यावरण की हमारी समझ की शुरुआत और बुनियाद वे चीज़ें और परिघटनाएँ हैं जो सीधे-सीधे हमारी इन्द्रियों की पहुँच में हैं (वैसे ही या मददगार उपकरणों के साथ)। यह समझ किसी अमूर्त विचार या पूर्व-कल्पना पर आधारित नहीं होती। यहाँ प्रशिक्षकों की प्रमुख ज़िम्मेदारी प्रशिक्षुओं को स्वयं प्रयोग करने में मदद करना है, न कि किसी जादूगर की तरह उनका मनोरंजन करना। अवलोकन और रिकॉर्डिंग करते समय, जहाँ व जब ज़रूरी हो, उनका ध्यान विभिन्न बातों की ओर दिलाया जाता है ताकि किसी भी बारीकी को फालतू या अप्रासंगिक मानकर अनदेखा न किया जाए। जहाँ तक सम्भव हो, इस बात का कोई अन्दाज़ा नहीं दिया जाता कि अपेक्षित अवलोकन क्या है। यदि किसी अवलोकन-विशेष पर ध्यान नहीं जाता, तभी इस बात की ओर इशारा किया जाता है। इससे प्रशिक्षुओं की विस्तृत अवलोकन करने की मौजूदा दक्षता आसानी-से सामने आ जाती है और उन्हें ज़रूरी मार्गदर्शन दिया जा सकता है।

गहन अवलोकनों के ऐसे सत्र के दौरान यह पहला सबक उभारा जा सकता है कि किसी जानी-पहचानी चीज़ में ऐसे पहलू हो सकते हैं जिन पर हमने पहले शायद ध्यान न दिया हो। और हम सभी जानते हैं कि पुराने में से किसी नए की खोज करने की पहली शर्त यही है कि हम ऐसी खोज की सम्भावना के प्रति जागरूक हों। यदि प्रशिक्षक सचमुच दिलचस्पी व समझ रखता हो, तो शुरुआत से ही वैसा रोमांचक और आनन्ददायक माहौल बन सकता है जो किसी क्राइम थ्रिलर में होता है। अन्तर बस यह है कि क्राइम थ्रिलर के समान यहाँ कोई सुपर-इंटेलिजेंट नफीस जासूस नहीं होगा और न ही किसी अपराध की कोई गन्ध होगी। यहाँ तो हर कोई सुरागों का जासूस है और इन सुरागों का सम्बन्ध प्रकृति की किसी दिलचस्प/रोमांचक घटना से है।

## आगे जाओ, पीछे जाओ और पुरखों से पूछो

जहाँ तक तो परिघटना को मात्र संवेदी अंगों के ज़रिए महसूस किया जा सकता है, वहाँ तक किसी अटकल

या कल्पनाशीलता की ज़रूरत नहीं है। तो यदि प्रशिक्षक उपयुक्त ढंग से इन्द्रियों के उपयोग का हुनर विकसित करने की ओर ध्यान दिलाए तो अपनी इन्द्रियों का उपयोग करने की क्षमता धीरे-धीरे ठोस ढंग से विकसित होती जाएगी। और फिर प्रशिक्षु स्वयं अपने प्रत्यक्ष प्रायोगिक अनुभवों से सीखेंगे कि प्रेक्षित तथ्यों के पीछे छिपे विभिन्न सम्बन्धों का खुलासा करने के लिए बुद्धि और कल्पनाशीलता जैसी क्षमताओं का उपयोग भी ज़रूरी है। अर्थात् अपने दिमाग का उपयोग करना उतना ही ज़रूरी है जितना अपने संवेदी अंगों और भुजाओं का उपयोग करने की क्षमता अर्जित करना।

जैसे, उपरोक्त उदाहरण में इस समझ तक पहुँचने के लिए कि दस दिन सेए गए अण्डे में भ्रूण में जो दो जोड़ी लगभग एक-से अंग पाए गए थे, उनमें से एक जोड़ी के पंख में तथा दूसरी जोड़ी के टाँगों में विकसित होने की सम्भावना है। एक और उदाहरण देख सकते हैं। यह निष्कर्ष भी अवलोकन की क्षमता और कल्पनाशीलता के मिले-जुले उपयोग से ही निकाला जा सकता था कि आम तौर पर क्यों पोल्ट्री के अण्डों से चूज़े नहीं बनते।

कहना न होगा कि मिडिल व प्रायमरी स्तर की विज्ञान शिक्षा में दूरगामी वैज्ञानिक कल्पनाशीलता के लिए गुंजाइश काफी सीमित होती है। फिर भी एक हमदर्द और समझदार शिक्षक की उपस्थिति में छात्रों के लिए ज़रूरत के हिसाब से कल्पनाशील होना असम्भव नहीं होगा। जैसे, वे मुर्गी के भ्रूण के विकास को देखकर कम-से-कम मोटे तौर पर तो जैव-विकास की समझ बना सकते हैं। इस तरह से, 'मात्र अवलोकन' या 'मात्र कल्पना' पर एकतरफा ज़ोर न होकर बचपन और किशोरावस्था से ही एक सन्तुलित सोच के बीज पड़ जाएँगे।

इसी सन्दर्भ में, तथा उदाहरणों के माध्यम से यह भी स्पष्ट हो सकता है कि जिस प्रक्रिया को लेकर अवलोकन/प्रयोग किए जा रहे हैं, उसके पूरे निहितार्थ को साकार करने के लिए अपने अनिवार्य रूप से सीमित वर्तमान अवलोकनों, विश्लेषण, अटकलों या कल्पनाओं तक सीमित रहना पर्याप्त नहीं है। कई मामलों में हमें अन्य लोगों के अवलोकनों के परिणाम ज्ञात होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, हमें अपने संवेदी अंगों से प्राप्त सूचनाओं के अर्थ और महत्व का ज़्यादा सम्पूर्ण व स्पष्ट भान होना चाहिए और इसके लिए हमें एक व्यापक दृष्टिकोण को समेटते विचारों और विवेक से परिचित होना होगा या उन तक जाना होगा जिसे 'बुज़ुर्गों और सयानों' यानी हमारे पूर्वजों ने हासिल किया है। और इसके लिए हमें किताबों का रुख करना होगा। चाहे ऐसा ज्ञान एक बार में हासिल न किया जा सके, मगर कुछ संकेतक, प्रारूप और सुराग भी बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। यह जोड़ना लाज़मी है कि

ऐसी व्यापक धारणाएँ एक-दो प्रयोग करके विकसित नहीं होतीं। यह तभी सम्भव है जब प्रयोग-दर-प्रयोग एक ही विधि का उपयोग किया जाए – शिक्षक प्रशिक्षण शिविर में हमें यही देखने को मिला।

## यहाँ-वहाँ देखो

चर्चित विषय के अन्तर्गत प्राकृतिक परिवेश में जो कुछ जाना जा सकता है, उसे उभरने का मौका मिलना चाहिए, चाहे वह सीधे-सीधे उस विषय के दायरे में न भी आता हो। उदाहरण के लिए, यहाँ नमकीन पानी (सेलाइन) की जीवन रक्षक भूमिका पर चर्चा की गई।

**चित्र-3:** हवा के दबाव सम्बन्धी प्रयोग या गैसों के फैलाव को समझने के लिए इंजेक्शन की बोतल, बेकिंग सोडा व नींबू का रस जैसी सामग्री भी गुणवत्ता-पूर्ण विज्ञान-किट के समकक्ष है।

## निष्कर्ष निकालो और शब्दों को संजोओ

कई प्रयोगों के दौरान सतत चल रहे मुक्त आदान-प्रदान से अनुभव बटोरे जा रहे हैं। ये सारे प्रयोग किसी अवधारणा के बारे में स्पष्टता में योगदान के लिहाज़ से डिज़ाइन किए गए हैं (जैसे वर्तमान उदाहरण में सजीवों की वृद्धि और विकास)। इस आदान-प्रदान से छात्रों के मन में कुछ धुँधली तस्वीर तो बनेगी या इस बात की कुछ झलक तो मिलेगी कि इस सब का अर्थ क्या है और इन सबसे जुड़े वैज्ञानिक नियम क्या हैं और प्रकृति में उनकी भूमिका क्या है। जैसा कि भाग-1 में कहा गया था, विकास अध्याय के अन्तर्गत ही बीजों के अंकुरण और धीरे-धीरे पौधा बनने से जुड़े अवलोकन भी किए गए थे।

और अन्त में, छात्रों के सीमित शब्द भण्डार और लेखन की सीमित कुशलता के मद्देनज़र जब साझा अनुभव और अवलोकन के

आधार पर अमूर्त धारणा प्रतिपादित की जा रही हो – और प्रशिक्षुओं और प्रशिक्षकों द्वारा मिलकर प्रतिपादित की जा रही हो और प्रशिक्षक अपने दिमाग के किसी कोने से छिपा हुआ ज्ञान नहीं टपका रहा हो और न ही वह कोई गूढ़ मंत्रोच्चार कर रहा हो – तब यह अमूर्तिकरण, अमूर्त होते हुए भी लगभग ठोस लगेगा। उदाहरण के लिए यहाँ प्रयोगों के माध्यम से वृद्धि व विकास को लेकर दो बातें उभरकर आईं:

- आकार में परिवर्तन और विभेदन
- संख्यावृद्धि के ज़रिए आयतन में वृद्धि।

स्वाभाविक रूप से ऐसे सारे चरण एहसास के अन्दरूनी विश्व में विस्तार के साथ-साथ वैज्ञानिक शब्दावली और सुगठित अभिव्यक्ति को भी समृद्ध कर रहे हैं।

## खोज का पहला कदम मुक्त, स्पष्ट व बेरोकटोक आदान-प्रदान है

प्रयोग - अवलोकन - विश्लेषण, अटकल-अनुमान-निष्कर्ष – इस क्रम में सीखने की जो प्रक्रिया निर्धारित हुई है वह प्रदाता (शिक्षक/प्रशिक्षक) से ग्राही (छात्र/प्रशिक्षु) की ओर होने वाला एकतरफा प्रवाह नहीं है, यह बात अण्डे के इर्द-गिर्द चले नाटक से एकदम साफ-साफ उभरी। इस पूरी प्रक्रिया में प्रशिक्षक/शिक्षक का मुख्य काम यह था कि समय-समय पर चर्चा को प्रोत्साहित करे। इसके लिए वे प्रयोग/अवलोकन प्रक्रिया को लेकर पैने सवाल उठाते हैं। चार खण्डों वाली जिस पाठ्यपुस्तक के आधार पर ये प्रयोग किए जाते हैं, उसमें क्रमबद्ध ढंग से ऐसे सवाल दिए गए हैं (उत्तर नहीं दिए गए हैं), जिन्हें प्रयोग के विभिन्न चरणों में उठाया जाता है। अपेक्षा होती है कि छात्र प्रयोग के आधार पर या अन्य सम्बन्धित अवलोकनों, या पहले किए गए किसी प्रयोग के अवलोकनों के विश्लेषण के आधार पर इन सवालों के जवाब दे सकेंगे। इसमें वे विशिष्ट प्रयोग या उससे बाहर के अनुभवों के आधार पर यथार्थवादी अनुमानों का भी सहारा लेंगे।

किन्तु सामने प्रस्तुत सवालों के जवाब तलाशने से भी पहले उन्हें प्रेरित किया जाता है कि वे उन सवालों को निरूपित करें जिनके उत्तर उन्हें खोजने हैं, अर्थात् वे सवाल जो अवलोकनों के आधार पर उत्पन्न होते हैं। इस तरह से अवलोकन और अमूर्तिकरण, दोनों कुशलताओं का प्रशिक्षण होता है।

ऐसे सत्र के अन्त तक यदि इस तरह उठे सवालों में वे सारे सवाल शामिल नहीं हो पाते जो पुस्तक में दिए गए हैं, तभी प्रशिक्षक उन छूटे हुए सवालों को उठाते हैं। निष्कर्ष तक पहुँचने की प्रक्रिया में इस बात को लेकर ज़ोरदार बहस, आदान-प्रदान और विश्लेषण का शोरगुल होता है कि कौन-से सवाल उठाए जाने चाहिए और किन जवाबों पर सहमति बनी

है। ऐसे शोर को रोकने की कोई कोशिश नहीं की जाती। प्रशिक्षकों की भूमिका समन्वयक की है ताकि आदान-प्रदान के इस शोर में रास्ता न भूल जाएँ, दिशा से न भटक जाएँ। इस सबसे यह स्पष्ट है कि पुस्तक में दिए गए सवाल वे न्यूनतम सवाल हैं जिन्हें भूलना नहीं है। और एक मायने में ये सवाल खोजबीन की एक मोटी-मोटी दिशा के द्योतक हैं, इनका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सवाल-जवाब के दायरे को सीमित किया जाए। वास्तविक कामकाज में चर्चा उस निर्धारित चौखट से बाहर जा सकती है और अक्सर जाती है।

प्रायोगिक अवलोकनों के विभिन्न चरणों में छोटे-छोटे सवाल उठाते हुए और/या उनके जवाब देते हुए, छात्र कमोबेश अपने-आप और इस बात को जाने बिना 'खोज' करते हैं और सम्बन्धित प्राकृतिक प्रक्रिया के लक्षणों और नियमों को लिपिबद्ध करते हैं। हाँ, कई बार ऐसा होता है कि शिक्षक/प्रशिक्षक को अन्ततः सबसे वैध उत्तर बताना पड़ता है (और कई मर्तबा ज़रूरी निरूपण के लिए उपयुक्त शब्द/जुम्ले चुनने में मदद करनी पड़ती है या बताने पड़ते हैं)। किन्तु – और इस बात से ज़मीन-आसमान का फर्क पड़ता है कि – ये जवाब आतुर, सजीव और जीवन्त जिज्ञासा के प्रत्युत्तर में उभरते हैं। ये जवाब प्रायः ज़ोरदार ढंग से व्यक्त किए जाते हैं। ये पत्थर की किसी दीवार जैसे जड़ मस्तिष्क पर पत्थरों की बौछार जैसे नहीं होते, जिसके अपने कोई सवाल नहीं होते। परिणामस्वरूप, ये उत्तर यहाँ-वहाँ टप्पे खाकर गुम नहीं हो जाते बल्कि सोखे जाते हैं और आत्मसात किए जाते हैं। इस प्रकार से शोरभरे जश्न की किलकारियों के बीच सुनहरे सत्य पर से धूल का आवरण परत-दर-परत हटाया जाता है।

### 'पता नहीं, पर कभी पता चलेगा' के रवैये का गुणगान

यदि उक्त प्रक्रिया ज़रूरी संजीदगी और जोशीले आदान-प्रदान के साथ चले, तो स्वाभाविक रूप से माहौल में कई सवाल (शिक्षकों के भी और शिक्षार्थियों के भी) उठते हैं, जिनमें से कुछ के उत्तर उस समय स्वयं प्रशिक्षकों को भी पता नहीं होते। उदाहरण के लिए योक के आसपास के काले क्षेत्र को याद कीजिए। ऐसे मामलों में शिक्षक, कोई बहाना बनाए बगैर, साफ तौर पर अपने वर्तमान अज्ञान की घोषणा करता है। इस प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर छात्रों को यह ज़रूरी सन्देश/सबक मिलता है कि प्रशिक्षक/शिक्षक सर्वज्ञाता नहीं हैं। यदि छात्रों के मन में प्रशिक्षण के दौरान उठने वाले विभिन्न सवालों को लेकर यह अनुभव उकेरा जाता है तो सम्भव है कि उनमें भविष्य में स्वयं सर्वज्ञाता की भूमिका निभाने या किसी सर्वज्ञाता को ढूँढ़ने की प्रवृत्ति थोड़ी कम होगी। इसके अलावा, इस तरह की मानसिकता के साथ वे उन लोगों को पहचानने

और समझने में ज़्यादा समर्थ होंगे जो विभिन्न अन्दरूनी और बाहरी दबावों के चलते सर्वज्ञाता बनने का स्वांग करते रहते हैं। (ऐसे लोगों की संख्या उतनी कम नहीं है, जितनी हम सोचते हैं। और हममें से भी कई लोग ईमानदारी से यह दावा नहीं कर सकते कि हमने कभी ऐसा विचित्र रवैया नहीं अपनाया है।) और यदि यह बीमारी लाइलाज नहीं हुई है तो ये छात्र इससे पीड़ित लोगों की मदद भी कर सकेंगे। यह बात शायद छोटी उम्र के लड़के-लड़कियों के सन्दर्भ में थोड़ी दूर की कौड़ी लगे, मगर यह असम्भव भी नहीं है।

**चित्र-4:** आम तौर पर महँगी बोरोसिल काँच की टेस्ट ट्यूब के टूटने के डर से प्रयोग ही नहीं करवाए जाते। यह होविशिका का कौशल ही है कि इंजेक्शन की बोतल, सायकल वॉल्व ट्यूब से भी पदार्थ गरम करने, गैस बनाने सम्बन्धी प्रयोग करवाने का मार्ग प्रशस्त किया।

अलबत्ता, इससे भी महत्वपूर्ण सम्भावना यह है, और इसे एक बड़ी उपलब्धि माना जा सकता है कि छात्र को धीरे-धीरे यह भान हो जाएगा कि कई सवालों के जवाब स्वयं छात्र को ही खोजने होंगे और अन्य लोग हमेशा उनकी तरफ से यह काम नहीं कर सकते। इस प्रकार से एक लाचार, अवांछनीय निर्भरता के स्थान पर यथासम्भव आत्मनिर्भरता की चाह उत्पन्न होगी। और, क्या शैक्षिक पाठ्यक्रम का यह एक महत्वपूर्ण लक्ष्य नहीं है? यह तो हुआ छात्र का पक्ष।

शिक्षक की ओर से देखें, तो यदि शिक्षक अपने मस्तिष्क को सर्वज्ञाता दिखने की चाह की पारम्परिक बेड़ियों से मुक्त हो सके, तो शिक्षक के लिए भी यह कोई छोटी-मोटी उपलब्धि नहीं

होगी। यदि आपको अर्जित ज्ञान में यदा-कदा की अपरिहार्य खामियों और अधूरेपन (कौन बचा है इनसे?) को छिपाने के बोझ से मुक्ति मिले, और यह कहने की गुंजाइश मिले कि 'मैं नहीं जानता' तो क्या इसे कोई छोटी-सी राहत कहेंगे? इस बात का कोई डर नहीं होगा कि गलती करने पर छात्रों द्वारा पकड़े जाएँगे (मुझे तथाकथित प्रतिष्ठित संस्थान के अपने कॉलेज के दिन याद हैं, जहाँ कुछ 'स्मार्ट' छात्र व्याख्यानों में 'गलतियाँ' ढूँढ़ने में विकृत मज़ा लेते थे और कुछ मामलों में जब वे सफल हो जाते थे, तो सम्बन्धित शिक्षक किस कदर शर्मिन्दा हो जाते थे)। छात्रों के अज्ञात सवाल किसी असहजता या भय का सबब न रहकर, अनुत्तरित सवाल का जवाब खोजने की उत्साही प्रक्रिया के प्रेरक बन जाएँगे। इस प्रकार से क्षितिज थोड़ा और विस्तार पाएगा। एक ही चीज़ को बार-बार चबाते जाने के दैनिक ढर्रे की एकरसता के सख्त शिकंजे तथा उससे उत्पन्न थकान और ऊब से मुक्ति की सम्भावना बढ़ेगी (यदि आप कभी शिक्षक कक्ष के माहौल से परिचित हैं तो जानते ही होंगे कि वहाँ शिक्षा के अलावा बाकी सारे मुद्दों पर बातचीत होती है)। इसका मतलब है कि शिक्षकों के लिए ज़्यादा व्यावसायिक सन्तुष्टि का रास्ता खुलेगा।

एक शंका यह व्यक्त की जाती है कि अपने विषय को लेकर ऐसे खुलकर अज्ञान को स्वीकार करने से छात्रों में शिक्षक के प्रति प्रेम और सम्मान कम हो जाएगा। यदि शिक्षक के लिए छात्रों पर दबदबा बनाना नहीं बल्कि उनका प्रेम व सम्मान पाना ज़्यादा महत्व रखता है, तो यह शंका पूरी तरह निराधार है। यह भय भी बेबुनियाद है कि अज्ञान की ऐसी स्वीकारोक्ति शिक्षक को छात्रों की नज़र में व्यर्थ साबित कर देगी। शिक्षक की ज़रूरत सीखने की राह में एक मार्गदर्शक के रूप में होती है, न कि सारे ज्ञान के खज़ाने के रूप में (वह भूमिका तो एक कैसेट या सीडी बेहतर निभा सकती है)। ऐसे सारे आधारहीन भय के विपरीत, जब ज़रूरी हो तब अज्ञान को स्वीकार करना शिक्षक और छात्रों के बीच एक सहयोगी, सहज, संयुक्त उद्यम का मार्ग प्रशस्त करता है।

व्यर्थ हो जाने के बेबुनियाद भय की बात करते हुए एक और पहलू ख्याल में आता है। यदि छात्रों को यह बताया जाए कि छात्र जिन चीज़ों को चन्द घण्टों या दिनों की अवधि में 'खोज' लेते हैं, उन्हें खोजने में मानवजाति को कितना समय लगा था (कभी-कभी तो पूरा युग बीत गया था) तो यह विज्ञान का इतिहास और इस सहस्त्राब्दि से चली यात्रा की मुश्किलें समझाने का एक कारगर तरीका होगा। उन्हें तत्काल यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनकी यह उपलब्धि पूर्वज्ञान के बगैर सम्भव नहीं है। और वे समझ पाएँगे कि यह पूर्वज्ञान उन्हें शिक्षक के माध्यम से मिलता है और

इसी की बदौलत उनकी 'खोज' सम्भव हो पाती है। लिहाज़ा, शिक्षक का सर्वज्ञाता से कमतर होने का सार्वभौमिक मानवीय गुण उनकी भूमिका को कमज़ोर नहीं कर सकता।

यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस तरह से विज्ञान के इतिहास की प्रासंगिक खोजबीन *एकलव्य* के पाठ्यक्रम में नहीं मिली। इसके अलावा, विज्ञान शिक्षा (या किसी भी शिक्षा) के पाठ्यक्रम में यह प्रवृत्ति विकसित करने का प्रयास होना चाहिए कि वह किसी भी व्यक्ति, समूह, विचारधारा या पन्थ के अचूक होने के दावे को खारिज करे। यदि शिक्षक स्वयं अपनी आत्म-छवि में से 'अचूकता' का यह चोगा उतार दें, तो इससे छात्रो में भी इस महत्वपूर्ण विचार (अचूकता को खारिज करने के विचार) की बुनियाद तैयार करने में मदद मिलेगी।

## 'अब तक कोई नहीं जानता' का गुणगान

यदि सवाल-जवाब का माहौल सहज और बेरोकटोक हो तो ऐसे सवाल प्रशिक्षुओं की तरफ से भी आ सकते हैं जिनके स्पष्ट जवाब आज तक पता नहीं हैं।

उदाहरण के लिए, मुझे 'सजीव और निर्जीव' नामक अध्याय याद है। यह अध्याय कक्षा-8 के लिए है। इस अध्याय की एक कक्षा के दौरान एक जाना-पहचाना काम था अपने आसपास की चीज़ों को सजीव और निर्जीव में बाँटना। यह स्पष्ट नहीं हो पाया कि अण्डों को इनमें से किस समूह में रखा जाए। यहाँ तक कि फीडबैक बैठक (इसका ज़िक्र लेख के भाग-1 में किया गया था) में भी यह अनसुलझा रहा, जहाँ सारे स्रोत व्यक्ति कक्षा के बाद मिलते हैं। मैं तो आज तक भी इसके वैध उत्तर को लेकर पक्का नहीं हूँ। यदि शिक्षक समझदार और खुले दिमाग वाले हों, तो सीखने वाले/छात्र, अनुत्तरित सवालों या जिज्ञासाओं के अपने एहसास से खुद ही समझ जाएँगे कि चाहे जितने छोटे पैमाने की बात हो, प्रकृति के कई सारे सवाल अनसुलझे हैं, हालाँकि इनके उत्तर पाने की खोज का कोई अन्त नहीं है। और वैज्ञानिक तरीके का मतलब यह नहीं होता कि कूदकर कोई भी उत्तर दे दिया जाए, क्योंकि येन केन प्रकारेण उत्तर देना ही है। इसके अलावा, किसी सवाल को सिर्फ इसलिए खारिज करना भी विज्ञान का तरीका नहीं है कि उसका उत्तर पता नहीं है। दरअसल, यह शेखी बघारना विज्ञान की भावना के विरुद्ध है कि विज्ञान में सारे उत्तर पता हैं। यदि युवा छात्रों का एक छोटा हिस्सा भी शेखी न बघारने का यह स्वस्थ असन्तोष अपने साथ लेकर वयस्क हो तो इसे ऐसे शिक्षा कार्यक्रम की एक उपलब्धि माना जाएगा। कहने का मतलब है कि यदि आगे की शिक्षा या जीवन की जद्दोजहद में यह मानसिकता क्षीण न पड़े।

वैसे यह ज़रूर कहा जा सकता है

कि 'ऐसे सारे तथाकथित अनुत्तरित सवाल वयस्क छात्रों, प्रशिक्षण में पधारे स्कूल शिक्षकों के होते हैं। यह मुद्दा उन बच्चों और किशोर छात्रों के लिए बेमानी है जिनके लिए यह कार्यक्रम बनाया गया है।' माफ कीजिए, मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ। इसे वास्तव में बहस से हल नहीं किया जा सकता। मजबूरन मैं एक उद्धरण दे रहा हूँ जो मेरे अनुभव से मेल खाता है और मैंने बहुत समय पहले पढ़ा था। ऐसा मैं किसी अधिकारी की ओट लेने के लिए नहीं कर रहा हूँ बल्कि इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि इस उद्धरण में मेरी बात को ज़्यादा असरदार ढंग से कहा गया है:

"दर्शन, विज्ञान और विद्वता जिस रूप में अस्तित्व में हैं, वह छोटे बच्चों के सवालों के जवाब देने का मानवता का प्रयास मात्र है।"[2]

---

[2] *Teach Yourself to Study – By G. G. Neill Wright, The English Universities Press, London, 1945, p. 137.*

---

**सुभाष चन्द्र गांगुली:** राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ता व आयोजक। लेख, पत्र, सम्पादकीय लेख आदि के रूप में बांग्ला और अँग्रेज़ी में लिखा है और इनमें सामाजिक, राजनीतिक, नागरिक अधिकारों एवं अन्य मुद्दों व विषयों को समाहित किया है। बांग्ला में कुछ उल्लेखनीय अनुवाद कार्य भी किए हैं, उदाहरण के लिए पुस्तक *अशोक एंड द डिक्लाइन ऑफ द मौर्यास* का अनुवाद।

**अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी:** एकलव्य द्वारा संचालित *स्रोत* फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

— — — — — — —

## परिशिष्ट

*[लेखक की टीप: हालाँकि, लेख का भाग-1 और अरस्तू का नीचे प्रस्तुत रिकॉर्ड एक जैसे प्रयोगों पर आधारित है, मगर तुलना करने पर इन दो के बीच अवलोकनों के कुछ अन्तर उजागर हो जाएँगे। कुछ अवलोकन ऐसे भी हैं जो अरस्तू के आलेख में मिलते हैं किन्तु वर्तमान आलेख में नहीं हैं। इसका उल्टा भी सही है। इन अन्तरों की व्याख्या करना वर्तमान लेखक की क्षमता व ज्ञान से बाहर है। यदि कोई पाठक इन अन्तरों पर रोशनी डाल सके तो लेखक आभारी रहेगा।]*

### अरस्तू द्वारा तकरीबन ढाई हज़ार साल पहले मुर्गी के अण्डे के अन्दर पल रहे चूज़े के रिकॉर्डेड अवलोकन

अण्डे से जन्म सारे पक्षियों में एक समान होता है, किन्तु निषेचन से लेकर जन्म तक की अवधि अलग-अलग होती है, जैसा कि कहा गया है। आम मुर्गी के मामले

में तीन दिन और तीन रातों के बाद भ्रूण का पहला संकेत मिलता है; बड़े पक्षियों में यह अन्तराल थोड़ा लम्बा होता है, छोटे पक्षियों में थोड़ा छोटा। इसी बीच योक अस्तित्व में आता है और नुकीले सिरे की ओर बढ़ता है, जहाँ अण्डे का प्रमुख तत्व स्थित होता है और जहाँ से चूज़ा निकलता है; और अण्डे की सफेदी में रक्त के एक धब्बे से रूप में हृदय दिखने लगता है। यह बिन्दु धड़कता है और गति करता है गोया इसमें जीवन हो, और इसमें से रक्तभरी दो शिराएँ आड़े-तिरछे रास्ते से अण्डे को घेरे दो त्वचाओं की ओर बढ़ने लगती हैं (साथ ही, अण्डा पदार्थ बढ़ता रहता है)। और अब रक्तिम तन्तुओं से युक्त झिल्ली योक को घेर लेती है। ये तन्तु शिराओं में से निकलते हैं।

इसके कुछ समय बाद शरीर विभेदित हो जाता है, शुरू में छोटा-सा और सफेद सिर साफ-साफ दिखता है और उसमें आँखें काफी बड़ी होती हैं। आँखों की यह स्थिति काफी समय तक बनी रहती है क्योंकि वे धीरे-धीरे ही साइज़ में घटती हैं और पिचकती हैं। शुरुआत में शरीर का निचला हिस्सा ऊपरी हिस्से की तुलना में नगण्य दिखता है। हृदय से निकलने वाली दो नलिकाओं में से एक तो बाहरी झिल्ली की ओर बढ़ती है तथा दूसरी नाभि-नाल के समान योक की ओर बढ़ती है। चूज़े का जीवन तत्व सफेदी में होता है और पोषण नाभि नाल के माध्यम से योक से आता है।

अब अण्डा दस दिन का चूज़ा हो गया है और उसके सारे अंग अलग-अलग दिखने लगे हैं। सिर अभी भी शेष शरीर से बड़ा है और आँखें सिर से बड़ी हैं मगर उनमें अभी भी दृष्टि का अभाव है। यदि आँखों को इस समय निकाल दिया जाए, तो वे सेम से बड़ी और काली होंगी। यदि उनकी उपचर्म (क्यूटिकल) को छीलकर अलग कर दिया जाए तो उनके अन्दर सफेद, ठण्डा तरल भरा होता है जो सूर्य के प्रकाश में चमकता है, किन्तु कोई ठोस पदार्थ मौजूद नहीं होता। सिर और आँखों की यह हालत होती है। इस समय बड़े-बड़े आन्तरिक अंग भी दिखाई देने लगते हैं; आमाशय और आन्तरिक अंगों का विन्यास भी दिखाई पड़ता है; और जो शिराएँ हृदय से निकलती हैं वे नाभि के करीब होती हैं। नाभि से एक जोड़ी शिराएँ निकलती हैं; एक उस झिल्ली की ओर जाती है जो योक को घेरे हुए है (और प्रसंगवश योक अब तरल है, या कहें कि सामान्य से ज़्यादा तरल है) और दूसरी शिरा उस झिल्ली की ओर जाती है जिसने भ्रूण और आसपास के तरल पदार्थ को घेरा हुआ है (क्योंकि जब चूज़ा बढ़ता है तब धीरे-धीरे योक का एक हिस्सा ऊपर की ओर जाता है तथा दूसरा हिस्सा नीचे की ओर जाता है और उनके बीच में सफेद तरल होता है; और अण्डे की सफेदी योक के नीचे की ओर होती है जैसा कि शुरू में था)। दसवें दिन सफेदी अण्डे की एकदम बाहरी सतह पर है, मात्रा कम हो गई है, लसलसी है, सख्त है और रंग फीका है।

विभिन्न घटकों का विन्यास निम्नानुसार है: सबसे पहले अण्डे की झिल्ली आती है (खोल की नहीं बल्कि उसके अन्दर की)। इस झिल्ली के अन्दर एक सफेद तरल है जो चूज़ा बनता है और उसके आसपास की झिल्ली उसे आसपास से अलग रखती है ताकि चूज़ा तरल से मुक्त रहे। चूज़े के बाद योक आता है जिसके अन्दर उपरोक्तानुसार दो में से एक शिरा है जबकि दूसरी शिरा आसपास के सफेद पदार्थ में है। (एक झिल्ली पूरी संरचना को घेरे हुए है, और उसके अन्दर सीरम जैसा तरल भरा हुआ है।) फिर एक और झिल्ली आती है जो भ्रूण के ठीक आसपास है, जैसा कि पहले बताया गया है यह भ्रूण को तरल से अलग रखती है। इसके नीचे योक है जो एक और झिल्ली से घिरा हुआ है (जिसके अन्दर वह नाभि तन्तु है जो हृदय से बड़ी शिरा की ओर जाता है) ताकि भ्रूण दोनों तरल पदार्थों से अलग रहे।

करीब बीसवें दिन यदि आप अण्डे को फोड़कर चूज़े को छुएँ तो वह अन्दर गति करता है और चींचीं करता है। बीसवाँ दिन बीत जाने के बाद वह रोम से ढँका होता है और अण्डे के खोल को फोड़ने लगता है। सिर दाहिनी टाँग के ऊपर बाजू में रखा होता है और पंख सिर के ऊपर रखे होते हैं। और लगभग इस समय एक झिल्ली दिखाई देती है जो लगभग गर्भनाल जैसी होती है जो खोल की सबसे बाहरी झिल्ली के नज़दीक होती है और जिसमें पहला नाभि तन्तु गया था। और प्रसंगवश अब चूज़ा पूरी तरह इस झिल्ली के अन्दर होता है और गर्भनाल जैसी दिखने वाली बाहरी झिल्ली भी जो योक को घेरे हुए है। ये दोनों झिल्लियाँ हृदय और बड़ी शिरा से जुड़ी हैं। इस पड़ाव पर बाहरी गर्भनाल वाला नाभि-तन्तु पिचक जाता है और चूज़े से अलग हो जाता है और योक में जाने वाली झिल्ली चूज़े की आँत से चिपक जाती है और इस समय तक योक की काफी मात्रा चूज़े के अन्दर होती है और उसके पेट में एक पीली तलछट होती है। लगभग इसी समय वह अपना अवशिष्ट पदार्थ बाहरी गर्भनाल की ओर फेंकता है और उसके आमाशय में अवशिष्ट होता है और बाहरी अवशिष्ट सफेद होता है (और एक सफेद पदार्थ अन्दर प्रवेश करता है)। धीरे-धीरे योक साइज़ में कम होता जाता है और चूज़े द्वारा उपभोग करके सोख लिया जाता है (इसीलिए यदि अण्डे से निकलने के दस दिन बाद आप चूज़े को काटें तो थोड़ा योक उसकी आँतों में मिलेगा) मगर वह नाभि से अलग हो जाता है और बीच में कुछ नहीं होता, उसे पूरी तरह उपयोग कर लिया गया है। उपरोक्त अवधि में चूज़ा सोता है, जागता है, हलचल करता है और चींचीं करता है; हृदय व नाभि साथ-साथ धड़कते हैं गोया चूज़ा साँस ले रहा हो। पक्षियों में अण्डे से जन्म को लेकर इतना ही।

*यह परिशिष्ट सुदीप्ता सरस्वती द्वारा तैयार किया गया है। इसके अंश 350BC में एरिस्टोटिल द्वारा लिखित किताब Animal Inquiries, भाग-3 से लिए गए हैं।*